वक्तव्य

अपनी अमिट सत्ता का स्वामी अजन्मा, अमर आत्मा भ
अपनी पर्याय की अपेक्षा आयुकर्म के निमित्त से नये नये जन्म
भी लेता है और जीवन के क्षण गिना कर मरण भी करता है
संसारी जीव को कर्म-अधीन होकर जन्म-मरण करना प
पड़ता है।

इस कर्माधीन जीवन मरण के खेल में प्रत्येक प्राणी क
(नारकी के सिवाय) मरण अप्रिय है। तदनुसार प्रत्येक ज
जीवन तो चाहता है, मरण नहीं चाहता, परन्तु कर्म की पराधी
में उसकी इच्छा का कुछ मूल्य नहीं आयुकर्म की समाप्ति प
जीवको अवश्य मृत्यु की गोद में जाना पड़ता है। जीवन मर
की इस परतन्त्रता को हटाने के लिये ही हमारे धर्म-ग्रन्थ त
त्याग, संयम-आचरण का उपदेश देते हैं।

साधारण जीव निश्चिन्त होकर अपने जीवन का पूर्ण उपभ
कर लेने पर ही मरें, ऐसा भी नियम नहीं, यदि उन्हें अ
जीवन में सौभाग्य से घातक निमित्त कारण नहीं मिलते, त
तो वे अपनी पूर्ण आयु का भोग कर मरण करते हैं और यदि
दुर्भाग्य से उनको कभी बाहरी जीवन घातक कारण मिल जाते
हैं तो वे अपनी आयु का भोग भी नहीं कर पाते, उससे पहले
ही मर जाते हैं।

बूचड़खाने में प्रतिदिन हजारों लाखों स्वस्थ गाय, बकरी
सूअर आदि कसाइयों की तथा मशीन की छुरियों से मार डा
हैं, जङ्गलों में शिकारियों के हाथ हजारों थलचर नभचर जी
मरते रहते हैं, मछलियाँ आदि लाखों जलचर जीव मांसभक्ष
मनुष्यों द्वारा मारे जाते हैं। भूकम्प, तूफान, जल की बाढ़ घिर

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अकाल-मरण

सैद्धान्तिक चर्चा : प्रश्नोत्तर

प्रश्न नं० १-अपमृत्यु अर्थात् अकालमरण नहीं है क्योंकि आगम में इसका स्पष्टता नहीं पाया जाता। क्या यह ठीक नहीं है ?

उत्तर-संसारी जीव दो प्रकार के हैं। १ सोपक्रमायुष्क जीव, २ निरुपक्रमायुष्क जीव [धवल पुस्तक १० पृ० २३३-३४]। जिन जीवों का अकालमरण (अपमृत्यु) संभव है वे सोपक्रमायुष्क जीव हैं और जिन जीवों का अकाल-मरण संभव नहीं है वे निरुपक्रमायुष्क जीव हैं।

श्री तत्वार्थसूत्र अध्याय २ सूत्र ५३ में निरुपक्रमायुष्क जीवों का उल्लेख है। वह सूत्र इस प्रकार है —

औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥

अर्थ-उपपाद जन्मवाले, चरमोत्तम देहवाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अनपवर्त्य आयु वाले (निरुपक्रमायुष्क) होते हैं।

इस सूत्र की टीका में श्री १०८ विद्यानन्दि महान् तार्किक आचार्य लिखते हैं कि इस सूत्र की सामर्थ्य से यह सिद्ध है

जाता है कि औपपादिक आदि से जो अन्य संसारी जीव हैं वे अपवर्त्य आयु वाले (सोपक्रमायुष्क) होते हैं। १

श्री १०८ पूज्यपाद आचार्य कहते हैं कि इन औपपादिक आदि जीवों की आयु बाह्य निमित्त से नहीं घटती, यह नियम है, तथा इनसे अतिरिक्त शेष जीवों का ऐसा कोई नियम नहीं है अथात् बाह्य कारण मिलने पर आयु घट जायगी। यदि कारण नहीं मिलेंगे तो आयु नहीं घटेगी। २

श्री १०८ भास्करनन्दि आचार्य भी कहते हैं कि इस सूत्र ५३ की सामर्थ्य से यह भी सिद्ध हो जाता है कि औपपादिक से जो अन्य संसारी जीव हैं उनकी अकालमृत्यु भी होती है। ३

श्री १०८ वीरसेन आचार्य ने तथा श्री १०८ पूज्यपाद आदि आचार्यों ने जो कुछ भी आपग्रंथों में कथन किया है वह सर्वज्ञ की वाणी के अनुसार कथन किया है, जो कि उनको गुरुपरम्परा से प्राप्त हुआ था। वे वीतरागी निर्ग्रंथ महान आचार्य हुए हैं। अन्य पुरुषों के समान उन्होंने अपनी तरफ से कुछ नहीं लिखा है। अतः उपर्युक्त कथन प्रामाणिक है।

प्रश्न नं० २–अपमृत्यु सकारण है या निष्कारण ? क्या पर भव का आयुबंध ही इस प्रकार का होता है ?

उत्तर–अमुक जीव का अपमृत्यु अवश्य होगी इस प्रकार का कोई आयुबंध नहीं होता। औपपादिक आदि जीवों के

१–"सामर्थ्यतस्ततोऽन्येषामपवर्त्य [श्लोकवार्तिक पृ० १४१]

२–"न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियमः इतरेषामनियमः।" [सर्वार्थसिद्धि सूत्र ५६]

तेभ्योऽन्ये तु संसारिणः सामर्थ्यादपवर्त्यायुषोऽपि भवतीति गम्यते।

अतिरिक्त जो जीव हैं उनके भी अपमृत्यु का नियम नहीं है, क्योंकि उन सबकी अपमृत्यु नहीं होती। श्री धवल पु० ६ पृ० ७ पर कहा है कि संख्यात वर्ष आयु वाले (कर्मभूमियां) मनुष्य, तिर्यंचों की आयु का कदलीघात भी होता है और अधः स्थिति गलन भी होता है। यहां पर अध स्थिति गलन का अर्थ है कि कदलीघात के बिना आयु का प्रति समय एक एक समय की स्थिति का कम होना। इतनी विशेषता है कि परभव संबंधी आयुबंध के पश्चात् भुज्यमान आयु का कदलीघात नहीं होता। [धवल पु० पृ० २१०]

श्री सर्वार्थसिद्धि के 'इतरेषामनियम' इस वाक्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि औपपादिक आदि से भिन्न अन्य जीवों का कालमरण या अकालमरण का नियम नहीं है, अर्थात् इतर जीवों का अकालमरण ही होगा ऐसा नियम नहीं है।

श्री १०८ भास्करनन्दि आचार्य के 'तेभ्योऽन्ये तु संसारिण सामर्थ्यादपवर्त्यायुषोऽपि भवन्तीति गम्यते' इस वाक्य में 'अन्ये' शब्द से यह भी ज्ञात होता है कि औपपादिक आदि से भिन्न अन्य संसारी जीवों के अपमृत्यु भी होती है और अपमृत्यु नहीं भी होती है।

अमुक जीव की अपमृत्यु अवश्य होगी इस प्रकार का कोई आयुबंध नहीं होता। जिन जीवों को करणानुयोग का ज्ञान नहीं है वे ही ऐसा कहते हैं कि 'जिस जीव की सोपक्रम आयु है उसका मृत्यु के लिये ऐसा नियम है कि उसकी आयु नियम से उदीरणारूप होगी और अन्यरूप से नहीं होगी।' उन अज्ञानियों को यह भी खबर नहीं कि जिस आयुकर्म का उदय नहीं है उस आयु

कर्म की उदीरणा भी नहीं होती। वे * ख्याति व पूजा की चाह में पड़कर तथा आर्षविरुद्ध उपदेश देकर स्वयं को भी संसार में रुलाते हैं और अपने अनुयायी जीवों को भी संसार में रुलाते हैं।

नारकी, देव, भोगभूमिया के मनुष्य व तिर्यंच और तद्भव मोक्ष-जाने वाले मनुष्यों की आयु का कदलीघात नहीं होता है। शेष जीवों की आयु के लिये नियम नहीं। यदि शेष जीवों की आयु में कदलीघात का नियम मान लिया जावे तो आयु कर्म के उत्कृष्ट अबाधाकाल पूर्व कोटि के त्रिभाग के अभाव का प्रसंग आ जायगा। किन्तु आगम में उत्कृष्ट अबाधाकाल पूर्व कोटि का त्रिभाग कहा है, ‡ अतः कदलीघात का नियम नहीं है।

अकाल मरण के कारण—

कदलीघात मरण अर्थात् अकाल मरण जिन कारणों से होता है, उन कारणों को श्री १०८ भगवत् कुन्दकुन्द आचार्य निम्न दो गाथाओं में कहते हैं—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं ।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ॥ २५ ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहि विविहेहिं ॥ २६ ॥

[भाव पाहुड]

*—उदयम्मुदीरणस्स य सामित्ता णो य विज्जइ विसेसो । मोत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्तजोई अजोई य ॥ ४४ ॥ [प सं० ३/४४ ज्ञान पीठ]

‡—पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ [षट्खण्डागम १,८,६ सूत्र २३ धवल पु० ६, पृ० १६०]

अर्थ-विषभक्षणतें, वेदना की पीड़ा के निमित्तें, [illegible] रुधिर धातु का क्षयतें, भय तें, शस्त्रघाततें, [illegible] आहार का तथा श्वास का विरोधतें, इन कारणनितें [illegible] क्षय होय है ॥ २५ ॥

हिम कहिये शीत पालातें, अग्नि [illegible], [illegible] बड़े पर्वत पर चढ़कर गिरने से, बड़े वृक्ष पर [illegible] शरीर का भंग होने से, रस कहिये पारा [illegible] धातु का संयोग करि धारण करे भक्षे ऐसे [illegible] कारणों तें आयु का व्युच्छेद होय है ॥ २६ ॥

यदि सोपक्रमायुष्क अर्थात् संख्यात [illegible] तिर्यंच को उपर्युक्त कारणों में से एक [illegible] जायेंगे तो अकाल मरण हो जायगा और [illegible] में से कोई भी कारण नहीं मिलेगा [illegible] कदलीघात मरण नहीं होगा। कारण [illegible] व्यतिरेक अवश्य पाया जाता है। कहा है—

"तत्कारणकत्वस्य तदन्वयव्यतिरेक[illegible] कारणस्य घटादे कुलालान्वयव्यतिरे[illegible]। [illegible] बाधकाभावात् तस्य तद्व्यापकत्व[illegible] [illegible] [illegible]नुपलम्भस्तत्र न तन्निमित्तकत्व[illegible]

व्यवस्था है। जिसका जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक का है वह उस जन्य नहीं होता है, ऐसा देखा जाता है।

"यस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवति तत्तस्य मिति न्यायात्।" [धवल १२ पृ० २८९]

अर्थ-जो जिसके होने पर ही होता है और जिसके न होने पर नहीं होता वह उसका कारण होता है, ऐसा न्याय है।

सर्वज्ञ वाणी के अनुसार श्री १०८ विद्यानन्दि स्वामी भी कहते हैं कि शस्त्र-परिहार आदि बहिरंग कारणों का अपमृत्यु के साथ अन्वय-व्यतिरेक है। [श्लो० पृ० ३१२

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जब भी जिस जीव की अकाल मृत्यु होगी वह श्री कुन्दकुन्द भगवान द्वारा कहे गये विषभक्षण आदि कारणों के द्वारा ही होगी, विषभक्षण आदि के अभाव में या अभाव कर देने पर अकालमृत्यु नहीं होगी।

प्रश्न—जो रोगते दुःख होय, ताः दुःख को दूर करने के अर्थ वैद्यक शास्त्र का प्रयोग है, अकालमृत्यु के अर्थ नाहीं?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नाहीं है, जातें वैद्यक-शास्त्र का प्रयोग दोऊ प्रकार करि देखिए है। तातें दुःख होय ताका भी प्रतीकार है, बहुरि अकालमरण का भी प्रतीकार है।

टीका-अर्थ इस प्रकार है—

प्रश्न—दुख के दूर करने अर्थ वैद्यक का प्रयोग है?

समाधान—ऐसा नाहीं, जातें दोय प्रकार करि प्रयोग देखिए है। तहाँ वेदनाजनित दुःख होय ताके दूर करने अर्थ भी

चिकित्सा इरिष्ट है और येन्ना से अनुदय में भी अकालमृत्यु के दूर करने अर्थ चिकित्सा इरिष्ट है। तातैं अपमृत्यु सिद्ध होय है।

श्री भास्करनन्दि आचार्य श्री सुखबोध टीका में कहते हैं– "विषशस्त्रवेदनादिबाह्यविशेषनिमित्तविशेषेणापवर्त्यते ह्रस्वीक्रियते इत्यपवर्त्यं।" अर्थात् विष शस्त्र वेदनादि बाह्य विशेष निमित्तों से आयु का ह्रस्व (कम) करना अपवर्त्य आयु है। बाह्य निमित्तों से भुज्यमान आयु की स्थिति कम हो जाती है, यह इसका अभिप्राय है।

श्री १०८ विद्यानन्दि आचार्य भी कहते हैं–"न ह्यप्राप्तकालस्य मरणाभावः खड्गप्रहारादिभिर्मरणस्य दर्शनात्।" अर्थात्-अप्राप्त काल अर्थात् जिसका मरणकाल नहीं आया ऐसे जीव के भी मरण का अभाव नहीं है क्योंकि खड्गप्रहार आदि से मरण देखा जाता है।

सर्वज्ञ के उपदेश अनुसार लिखे गये इन आर्षवाक्यों का यह अभिप्राय है कि जिन कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यंचों का मरण काल नहीं आया है वे जीव भी खड्गप्रहार आदि के द्वारा मरण को प्राप्त होते हुये देखे जाते हैं, क्योंकि बाह्य निमित्तों से उनकी आयु-स्थिति कम हो जाती है।

इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे जीवों के द्वारा भी आयु-स्थिति कम होकर मरण हो जाता है। अतः समयसार गाथा नं॰ २४८ २४९ के कथन का एकान्त नियम नहीं है। यदि सर्वथा ऐसा मान लिया जाय कि एक दूसरे की आयु को नहीं हर सकता तो उपयुक्त सर्वज्ञवाणी से विरोध आता

है, तथा हिंसा का अभाव हो जाता है और हिंसा के अभाव से बंध मोक्ष के अभाव का प्रसंग आ जाता है। बंध मोक्ष के अभाव में धर्मोपदेश निरर्थक हो जाता है [समयसार गाथा ४६ टीका] किन्तु बंध मोक्ष का अभाव है नहीं, अतः एक जीव के द्वारा दूसरे जीव का घात होता है यह आगम, युक्ति तथा प्रत्यक्ष से सिद्ध है। अतः अकाल मृत्यु नहीं है, ऐसा एकान्त नहीं है।

यदि सर्वथा अकाल मरण न माना जावे तो सिंह सर्प आदि शस्त्र प्रहार आदि से रक्षा का उपाय कौन करता? किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव भी इनसे बचने का उपाय करते हुए देखे जाते हैं। सर्प के काट लेने पर उसके विष को दूर करने का उपाय किया जाता है तथा विष भक्षण कर लेने पर वमन आदि करा कर मरण से बचाया जाता है। शस्त्रप्रहार से बचने के लिए श्री अकलंक और निकलंक दोनों भाई विद्यालय से भाग निकले थे, इसपर भी श्री निकलंक का मरण शस्त्रप्रहार द्वारा हुआ और श्री अकलंक छिपकर बच गये।

यदि सर्वथा अकालमरण न माना जावे तो जीवदया का उपदेश निरर्थक हो जायगा। श्री १०८ श्रुतसागरसूरि ने तत्वार्थवृत्ति में कहा है– 'अन्यथा दयाधर्मोपदेशचिकित्साशास्त्रं च व्यर्थं स्यात्।' अर्थ–अकाल मरण को न मानने से दयाधर्म का उपदेश और चिकित्साशास्त्र व्यर्थ हो जायगे।

इसका अभिप्राय यह है कि यदि अकाल मरण न माना जावे तो चिकित्सा शास्त्र में अकाल मरण के प्रतीकार का जो प्रयोग किया है वह व्यर्थ हो जायगा क्योंकि जब अकाल मरण नहीं तो प्रतीकार किसका किया जाय? दया धर्म का उपदेश

भी व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि जब दूसरे के द्वारा कोई जीव मारा या बचाया नहीं जा सकता तो दया कैसे की जा सकती है? किन्तु श्री कुंदकुंद भगवान ने दया का उपदेश स्वयं दिया है जो निम्न प्रकार है —

छज्जीव छडायदणं णिच्च मणवयणकायजोएहिं।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्ता॥१३१॥
(भावपाहुड़)

अर्थ-हे मुनिवर! तू मन वचन काय के योगनिकरि छह काय के जीवनि की दया कर, बहुरि छह अनायतन कूं परिहर-छोड़ि।

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगइमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं ॥२५॥ (बोधपाहुड़)

अर्थात्-धर्म वह ही है जो दया करि विशुद्ध है। प्रव्रज्या (दीक्षा) वही है जो परिग्रह रहित है, देव वही है जिसके मोह नष्ट हो गया है। ये तीनों भव्य जीवों के कल्याण करने वाले हैं।

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसणणाणं तओ य सीलस्स परिवारो ॥१९॥
(शीलपाहुड़)

अर्थ-जीवदया, इन्द्रियों का दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन ज्ञान तप ये सर्व शील(स्वभाव)के परिवार हैं।

इन उपर्युक्त गाथाओं से तथा भावपाहुड़ की गाथा २५-२६ से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री कुंदकुंद भगवान को स्वयं दूसरों द्वारा आयु का हरा जाना तथा दूसरों के द्वारा मरण से रक्षा किया जाना इष्ट था। अतः समयसार २४७-२६० के अभिप्राय

को प्रकरण अनुसार समझ कर एकान्त पक्ष का आग्रह नहीं करना चाहिये। समयसार, भाव पाहुड, बोधपाहुड शील पाहुड आदि में जो श्री कुंदकुंद भगवान के वाक्य हैं वे सर्व ही माननीय हैं। जो मात्र समयसार का कुछ गाथाओं को मानते हैं और श्री कुंदकुंद के भी अन्य वाक्यों को नहीं मानते वे सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते।

प्रश्न नं० ४—क्या अकाल मरण टल भी सकता है?

उत्तर—अकाल मरण के कारणों से बचना अथवा अकाल मरण के कारणों के मिल जाने पर उनके प्रतिकार के द्वारा अकाल मरण टल जाता है। जैसे सर्प आदि से दूर हट जाना जिससे वह काट हीं न सके, अथवा सर्प आदि के काट लेने पर विष के प्रतिकार द्वारा अकालमरण टल भी जाता है।

श्री सर्वज्ञ देव के उपदेश अनुसार श्री १०८ विद्यानंद महानाचार्य ने श्लोकवार्तिक में इस प्रकार कहा है—

'तद्भावे पुनरायुर्वेदप्रामाण्यचिकित्सितादिनां क्व सामर्थ्योपयोग दुःखप्रतीकारादाविति चेत्, तथैवापमृत्युप्रतीकारादौ तदुपयोगोऽस्तु तस्योभयथा दर्शनात्। न चायु क्षयनिमित्तोपमृत्यु कथं केनचित्प्रतिक्रियता? सत्यप्यसद्वेद्योदयेंतरङ्गे हेतौ दुःखं बहिरंगे वातादि-विकारे तत्प्रतिपक्षौषधोपयोगोपनीते दुःखस्यानुत्पत्तेः प्रतीकारः स्यादिति चेत्, तर्हि सत्यपि कस्यचिदायुरुदयतरंगे हेतौ बहिरंगे पथ्याहारादौ विच्छिन्ने जीवनस्याभावे प्रसक्ते तत्सपादनाय जीवनाधानमेवाप-मृत्योरस्तु प्रतीकार।

अर्थ—अकालमृत्यु के अभाव में आयुर्वेद को प्रमाण-भूत चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा (आपरेशन) आदिक की

सामर्थ्य का प्रयोग किस पर किया जावेगा [illegible] आदि का प्रयोग अकालमृत्यु के [illegible] जाता है।

शंका—चिकित्सा आदि का प्रयोग [illegible] लिये किया जाता है। अत चिकित्सा की [illegible] अभाव का प्रसंग नहीं आता।

समाधान—जिस प्रकार चिकित्सा [illegible] की निवृत्ति होती है उसी प्रकार चिकित्सा [illegible] प्रयोग से अकालमृत्यु की निवृत्ति भी [illegible] (दुःख-अपमृत्यु) के प्रतिकार के लिये [illegible] जाता है।

शंका—आयुक्षय के निमित्त से [illegible] ऐसे अकाल मरण का निराकरण नहीं [illegible]

प्रतिशंका—असाता वेदनीय [illegible] होता है। ऐसे दुःख का भी निराकरण [illegible] किया जा सकता है?

प्रतिशंका का समाधान—[illegible] कारण होते हुए भी वातादि का [illegible] होने पर दुःख होता है। [illegible] औषध का प्रयोग करने पर दुःख [illegible] ही उसका इलाज है।

शंका का समाधान—यदि [illegible] के आयु का अन्य अंतरंग [illegible] आहार आदि के विच्छेद का [illegible]

जीवन के अभाव का प्रसग आ जाता है। ऐसा प्रसग आने पर जीवन की रक्षा करने के लिए जीवन के आधारभूत आहारादिक अकालमृत्यु के प्रतीकार हैं।

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—(१) बहिरग कारणों से अकाल मरण होता है। (२) बहिरग कारणों के प्रतीकार से अकाल मरण टल जाता है।

अकाल मरण का अनियत काल—

प्रश्न न० ४—अकाल मरण का काल व्यवस्थित है, क्यों जिस समय जिसका मरण सर्वज्ञ ने देखा है उस ही सम उसका मरण होगा जैसाकि स्वामी कार्तिकेय ने गाथा ३२१-३ में कहा है। अत बाह्य कारणों से न तो अकाल मरण हो सक है और बाह्य-कारणों के प्रतीकार से अकाल मरण टल भी न सकता। व्यवहार से जिसको अकाल मरण कहा जाता है निश्च नय से वह भी काल मरण ही है, क्योंकि प्रत्येक जीव का मर व्यवस्थित है।

उत्तर—जिन जीवों का मरण, शस्त्र-प्रहार आदि-बा कारणों के बिना होता है उनका मरण-काल व्यवस्थित है किंतु शस्त्रप्रहार आदि बाह्य कारणों से जिनका मरण होता उनका अपमृत्यु काल उत्पन्न होता है। सर्वज्ञदेव ने भी 'काल न और 'अकाल नय' इस प्रकार परस्पर विरोधी दो नय कही है यदि सर्वज्ञदेव इन दोनों में से एक ही नय को कहते तो एका मिथ्यात्व का दूषण आ जाता। काल नय, अकाल नय स्वरूप सर्वज्ञदेव ने इस प्रकार कहा है—

'कालनयेन निदाघदिवसानुसारि पच्यमानसहकारफलवत्सम-यायत्तसिद्धिः, अकालनयेन कृत्रिमोष्मपच्यमानसहकारफलवत्स-मयानायत्तसिद्धिः।' [प्रवचन सार]

अर्थ—काल नय से कार्य की सिद्धि (कार्य का होना) समय के आधीन होती है। जैसे आम्रफल गर्मी के दिनों में पकता है। अर्थात् काल नय से कार्य अपने व्यवस्थित समय पर होता है। अथवा काल के अनुसार होता है।

अकाल नय से कार्य की सिद्धि समय के आधीन नहीं होती है। जैसे आम्रफल कृत्रिम गर्मी से पका लिया जाता है। अर्थात् अकाल नय से कार्य होने का काल व्यवस्थित नहीं है। जैसा आम्रफल के पकने का काल कृत्रिम गर्मी के द्वारा उत्पन्न कर लिया जाता है। यदि ऐसा माना जावे कि सर्व ही कार्य काल के अनुसार होते हैं तो अकाल नय का उपदेश व्यर्थ हो जायगा। किन्तु सर्वज्ञ के वाक्य व्यर्थ नहीं होते। अतः सर्व ही कार्य काल के अनुसार होते हैं ऐसा एकान्त नियम नहीं है।

काल और अकालनयों की दृष्टि से भी सर्वज्ञदेव ने निम्न प्रकार उपदेश दिया है—न ह्यप्राप्तकालस्य मरणाभावः खड्गप्रहारादिभिर्मरणस्य दर्शनात्। प्राप्तकालस्यैव तस्य तथा दर्शनमिति-चेत् कः पुनरसौ कालः प्राप्तोऽपमृत्युकालं वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, द्वितीयपक्षे खड्गप्रहारादिनिरपेक्षत्वप्रसंग। सकल बहिःकारणविशेषनिरपेक्षस्य मृत्युकारणस्य मृत्युकालव्यवस्थिते। शस्त्रसंपातादिबहिरंगकारणान्वयव्यतिरेकानुविधायिनस्तस्यापमृत्यु-कालत्वोपपत्तेः। (श्लोकवार्तिक)

अर्थ—जिनके मरणकाल प्राप्त नहीं हुआ उनके मरणकाल का अभाव है अर्थात् उनका मरण नहीं होता, ऐसा कहना ठीक

नहीं है, क्योंकि शस्त्रप्रहार आदि के द्वारा, मरणकाल प्राप्त न होने पर भी, मरण प्रत्यक्ष देखा जाता है।

शंका—जिसका मरणकाल आ गया है उसही का मरण देखा जाता है।

प्रतिशंका—मरणकाल से क्या प्रयोजन है? जिसकी आयु पूर्ण हो गई अर्थात् जिसके आयु कर्म की स्थिति पूर्ण हो गई उसके मरणकाल से प्रयोजन है या अपमृत्युका' अर्थात् जिसके आयुकर्म की स्थिति पूर्ण नहीं हुई है उसके मरणकाल से प्रयोजन है?

शंका का समाधान—प्रथम पक्ष में सिद्धसाध्यता दोष आता है, क्योंकि आयु पूर्ण होने पर काल मरण होता है, यह हमें इष्ट है, इसके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। द्वितीय पक्ष में शस्त्रप्रहार आदि की निरपेक्षता का प्रसंग आ जायगा। जिसका मृत्युकारण सम्पूर्ण विशेष बाह्य कारणों से निरपेक्ष है उसका मृत्युकाल व्यवस्थित (निश्चित) है। शस्त्रप्रहार आदि का अपमृत्यु के साथ अन्वय व्यतिरेक का विधान होने से अपमृत्युकाल उत्पन्न होता है।

यहां पर 'व्यवस्थिते' और 'उपपत्ते' ये दोनों शब्द ध्यान देने योग्य हैं। कालमरण में मरण काल व्यवस्थित (निश्चित) है किन्तु अकाल मरण में बाह्य विशेष कारणों से मरण काल उत्पन्न होता है। अन्यथा अकाल मरण (अपमृत्यु) के अभाव का प्रसंग आ जायगा। यदि ऐसे अकाल मरण का अभाव माना जावे तो आयुर्वेद की प्रमाणभूत चिकित्सा तथा शल्य आदि (आपरेशन आदि) की सामर्थ्य का उपयोग कैसे होगा? क्योंकि उस चिकित्सा की सामर्थ्य का उपयोग तो अकालमरण के

प्रतिकार में होता है। 'तदभावे पुनरायुर्वेदप्रामाण्यचिकित्सितादीनां च क्व सामर्थ्योपयोग' ।'

जब अकालमरण का प्रतिकार भी हो सकता है तो इससे भी सिद्ध है कि अकाल मरण का काल व्यवस्थित नहीं है।

कुछ एकान्तविमूढ अकालमरण के मानने पर यह आपत्ति उठाते हैं कि यदि अकालमरण माना जावेगा तो अकाल जन्म भी मानना होगा और अकाल जन्म के मानने पर करणानुयोग की यह व्यवस्था कि मरण से अधिक से अधिक तीन समय पश्चात् जीव जन्म ले लेता है गड़बड़ा जायगा। इस प्रकार की आपत्ति उठाने में दो ही कारण हो सकते हैं। या तो इन्होंने करणानुयोग के रहस्य को समझा ही नहीं या उनको किसी प्रकार का हठाग्रह है। इसलिये वे सर्वज्ञ वाक्यों पर आपत्ति उठाते हैं।

अकाल मरण का उपरोक्त वर्णन स्वयं सर्वज्ञदेव ने किया है। जिनको सर्वज्ञ-वाक्यों पर श्रद्धा नहीं है वे सम्यग्दृष्टि भी नहीं हैं।

'विषशस्त्रवेदनादिबाह्यनिमित्तविशेषेणापवर्त्यते ह्रस्वीक्रियत इत्यपवर्त्यं अपवर्तनीयमित्यर्थ । [श्रुतबोध तत्वार्थ वृत्ति पृ ४५]

अर्थात् विषभक्षण, शस्त्रप्रहार, वेदना आदि विशेष बाह्य कारणों से जिनकी आयु का ह्रास (कम) हो सकता हो उनकी आयु अपवर्तनीय है।

भाव पाहुड में भी श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने कहा है कि विष भक्षण से, वेदना की पीड़ा से रक्त क्षय से, भय से, शस्त्र

घात से, संक्लेश परिणाम से, आहार तथा श्वास के निरोध से, इन कारणों से आयु का क्षय अर्थात् आयु कम होती है।

भुज्यमान आयु की स्थिति के ह्रास होने को अकाल मरण या अपमृत्यु कहते हैं। भुज्यमान आयु स्थिति के ह्रास हो जाने के पश्चात् और मरण से अन्तर्मुहूर्त (असंक्षेपाद्धा) काल से पूर्व परभव आयु का बन्ध होने पर ही मरण होता है। परभव की आयु का बन्ध हुए बिना किसी भी जीव का मरण नहीं होता। अकाल मरण वाले भी जिनके पूर्व में आयु का बन्ध नहीं हुआ, वे भी मरण से अन्तर्मुहूर्त काल (असंक्षेपाद्धा) पूर्व ही परभव आयु का बन्ध करते हैं। आयु का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त काल अर्थात् असंक्षेपाद्धा होता है (धवल पु० ६ पृ० १६३–१६४)। अतः अकाल जन्म का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि अकाल जन्म का प्रश्न तो तब उठ सकता है जब परभव की आयु बंध के बिना मरण हो जावे या आबाधाकाल से पूर्व मरण हो जावे, किन्तु दोनों बातें संभव नहीं हैं [धवल पु० १०] आयु कर्म का जघन्य आबाधाकाल असंक्षेपाद्धा है अर्थात् अबाधाकाल इतना जघन्य है कि जिसका संक्षेप अर्थात् ह्रास नहीं हो सकता है।

मरण और जीवन पर्यायाश्रित हैं (समयसार गाथा ५६ टीका) अतः निश्चय से न कालमरण है और न अकाल मरण है। पर्यायाश्रित व्यवहार नय से ही काल और अकाल दोनों मरण हैं। समयसार गाथा ६ में भी कहा है कि निश्चयनय से जीव न प्रमत्त है और न अप्रमत्त है, क्योंकि ये दोनों अवस्था पर्यायाश्रित हैं, जो निश्चयनय का विषय नहीं है।

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२१–३२२ पर विचार)

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥३२२॥

अर्थ—जिस जीव के, जिस देश में, जिस काल में, जिस विधान से, जो जन्म अथवा मरण जिनदेव ने नियत रूप से जाना है, उस जीव के, उसी देश में, उसी काल में, उसी विधान से होने वाले उस जीवन या मरण को इन्द्र या जिनेन्द्र कौन टाल सकता है?

अब प्रश्न यह होता है कि क्या इन दो गाथाओं द्वारा श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय का 'अनियति निरपेक्ष' एकान्त नियति सिद्धान्त के उपदेश देने का अभिप्राय रहा है या अन्य कुछ अभिप्राय रहा है?

जैन धर्म का मूल सिद्धांत अनेकान्त है। इसीलिए सर्वज्ञदेव ने नियति नय और अनियति नय इन दो परस्पर विरोधी नयों का उपदेश दिया है (प्रवचन सार)। श्री सर्वज्ञदेव ने यह भी कहा है कि जो मात्र नियति नय को मानता है वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है अर्थात् गृहीत मिथ्यादृष्टि है। श्री १०८ भगवान महावीर की दिव्यध्वनि अनुसार श्री १०८ गौतम गणधर ने द्वादशांग रूपी श्रुत की रचना की, जिसके दृष्टिवाद नामक बारहवें अङ्ग में परमतों (मिथ्या मतों) का कथन है, उसमें नियतिवाद परमत का भी कथन है। कहा भी है—

सुत्तं अट्ठासीदि सदसहस्सपदेहि ८८००००० अबंधओ अवलेवओ अकत्ता अभोत्ता णिग्गुणो सव्वगओ अणुमेत्तो णत्थि जीवो जीवो चेव अत्थि पुढवियादीणं समुदएण जीवो उप्पज्जइ णिच्चेयणो णाणेण विणा सचेयणो णिच्चो अणिच्चो अप्पेत्ति वण्णेदि। तेरासिय णियदिवाद विण्णाणवाद सद्दवाद पहाणवाद दव्ववाद पुरिसवादं च वण्णेदि। [धवल पु १ पृ० ११० १११]

अर्थ—दृष्टिवाद अङ्ग का सूत्र नामक अर्थाधिकार अठासी लाख पदों के द्वारा जीव अबन्धक ही है, अवलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, सर्वगत ही है, अणु प्रमाण ही है, जीव नास्तिस्वरूप ही है, जीव अस्ति स्वरूप ही है। पृथ्वी आदि पांच भूतों के समुदाय रूपसे जीव उत्पन्न होता है, चेतन रहित है ज्ञान के बिना भी सचेतन है। नित्य ही है, अनित्य ही है, इत्यादि रूप से परमतों का कथन करता है। इसमें त्रैराशिकवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद, और पुरुषवाद, परमतों का भी वर्णन है। अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के सूत्र अधिकार में 'नियतिवाद' को परमतों में गणना की है।

दृष्टिवाद अंग में श्री १००८ गौतम गणधर ने जिस नियतिवाद को एकांत मिथ्यात्व अर्थात् गृहीत मिथ्यात्व कहा है उस नियतिवाद का स्वरूप निम्न प्रकार कहा गया है—

"यद्यदा यद्भवति तद्भवति, यथा भवति तथा भवति, येन भवति तेन भवति, यदा भवति तदा भवति, यस्य भवति तस्य भवति, इति नियतिवादः।" [पंचसंग्रह पृ० ५४७]

यदा यथा यत्र यतोऽस्ति येन यत्,
तदा तथा तत्र ततोऽस्ति तेन तत्।

मति अणताणता तीसु वि कालसु सव्व दव्वाणि ।
सव्व पि अणयत तत्ता भणिद जिणिंदेहिं ॥२२४॥

ज वत्थु अणेयत त चिय कज्ज करेदि णियमेण ।
बहु-धम्म-जुद अत्थ कज्ज-करं दीसदे लोए ॥२२५॥

सव्व पि अणेयतं परोक्ख-रूवेण ज पयासेदि ।
त सुयणाण भण्णदि ससय-पहुदीहि परिचत्त ॥२६२॥

णाण धम्मजुद पि य एय धम्म णिवुच्चदे अत्थ ।
तस्सयविवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाण ॥२६४॥

जो तच्चमणेयत्त णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं ।
लोयाण पण्ह-वसदो ववहार पवत्तणट्ठ च ॥३११॥

जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णव-विह अत्थ ।
सुदणाणेण णएहि य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥३१२॥

अर्थ—सब द्रव्य तीनों ही काल में अनतानन्त हैं । अतः जिनेन्द्र ने सभी को अनेकान्तात्मक कहा है ॥२२४॥

जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही नियम से कार्यकारी है, क्योंकि लोक में बहुत धर्मयुक्त अर्थ ही कार्यकारी देखा जाता है ॥२२५॥

जो परोक्ष रूप से सर्व को अनेकान्त रूप दर्शाता है और सशय आदि से रहित है उस ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं ॥२६२॥

यद्यपि अर्थ नाना धर्मों से युक्त है तथापि नय एक धर्म को कहता है क्योंकि उस समय उसी धर्म की विवक्षा है, शेष विवक्षा नहीं है ॥२६४॥

लोगों के प्रश्नों के वश से तथा व्यवहार को चलाने के लिये सप्त भंगी के द्वारा जो नियम से अनेकान्तात्मक (जीव

(जीव आश्रव बंध सवर निर्जरा मोक्ष) इन सात तत्वों का श्रद्धान करता है तथा जीव अजीव आस्रव बंध सवर निर्जरा मोक्ष पुण्य और पाप इन नौ पदार्थों का श्रुतज्ञान और नयों के द्वारा आदरपूर्वक मानता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है ॥३११-३१२॥

इन गाथाओं से स्पष्ट है कि श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय को अनेकान्त का सिद्धान्त इष्ट था। इसलिये उन्होंने यह कहा कि जो नयम से, जीव अजीव द्रव्य और आस्रव बंध सवर निर्जरा मोक्ष पर्याय, इन सात तत्वों का श्रुतज्ञान और नयों के द्वारा अनेकान्त रूप से श्रद्धान करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। यहां पर एकांत नियतिवाद के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन नहीं कहा है किन्तु श्रुतज्ञान के अंश रूप नियति नय अनियति नय काल नय अकाल नय आदि नयों के द्वारा अनेकान्त रूप से तत्व और अर्थ के श्रद्धान को शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है। गाथा ३१२ में 'सुदणाणेण' अर्थात् श्रुतज्ञान शब्द से यह भी स्पष्ट कर दिया है कि जो श्री सर्वज्ञ ने द्रव्य श्रुतरूप कहा है उसके ज्ञान से जो तत्वों का श्रद्धान होगा वह शुद्ध सम्यग्दर्शन है अर्थात् जो सर्वज्ञ ने कहा है वह सत्य है, इस श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है।

जो ण विजाणदि तच्च, सो जिणवयणे करेदि सद्दहणं ।
जं जिणवरभणियं तं, सव्वमहं सम्ममिच्छामि ॥३२४॥

अर्थ—जो तत्वों को नहीं जानता किन्तु जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धा करता है और जो जिनेन्द्र भगवान ने कहा है उसको मानता है वह सम्यग्दृष्टि है।

गाथा ३११-३१२ और ३२४ में यह क्यों नहीं कहा कि जो सर्वज्ञ ने देखा है उसकी जो श्रद्धा करता है वह सम्यग्दृष्टि है ?

श्री १०८ कुन्दकुन्द आचार्य ने भी समयसार प्रथम गाथा में यह प्रतिज्ञा की है कि जो केवली (सर्वज्ञ) और श्रुतकेवली (पूर्ण द्रव्यश्रुत के ज्ञाता) ने जो कहा है वह मैं कहूँगा। यह प्रतिज्ञा क्यों नहीं की कि सर्वज्ञ ने जो देखा है वह मैं कहूँगा। समयसार की प्रथम गाथा इस प्रकार है—

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडं, मिणमो सुदकेवली भणियं ॥१॥

जिन श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय ने तत्त्वों की अनेकान्तरूप से श्रद्धा तथा सर्वज्ञ वाक्यों की श्रद्धा को शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है क्या वे ही श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय गाथा नं० ३२१-३२३ द्वारा सर्वज्ञ-ज्ञान के आधार पर एकान्त नियतिवाद को मानने वाला सम्यग्दृष्टि है ऐसा कहते ? अर्थात् एकान्त की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन नहीं कह सकते थे। अतः इन तीन गाथाओं के यथार्थ अभिप्राय को समझने के लिये यह देखना होगा कि ये तीन गाथा ३२१-३२३ किस प्रकरण में आई हैं।

गाथा ३२१-३२३ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की हैं। इस ग्रन्थ में द्वादश अनुप्रेक्षा का कथन है। प्रथम अनुप्रेक्षा 'अनित्य' है जिसका कथन २० गाथाओं द्वारा किया गया है। वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये इस अनित्य अनुप्रेक्षा में धन-यौवन-स्त्री-पुत्र आदि सब पदार्थों को अनित्य दिखलाया है। यदि कोई प्रकरण को न समझकर अनित्य के इस उपदेश द्वारा पदार्थों को सर्वदा क्षणिक मानकर एकान्त क्षणिकवादी मिथ्यादृष्टि बन जावे तो इसमें स्वयं उसी का दोष है, क्योंकि उसने प्रकरण के अनुसार अनित्य की २० गाथाओं के यथार्थ अभिप्राय को नहीं समझा। वस्तु नित्य-अनित्य आत्मक अनेकान्त रूप है। अनित्य भावना

का उपदेश देने में श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय का यह कभी अभिप्राय नहीं हो सकता था कि पदार्थ अनित्य ही है। वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये 'अनित्यता' की मुख्यता से अनित्य अनुप्रेक्षा में कथन किया गया है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पदार्थ सर्वथा अनित्य है। इसी प्रकार अन्य अनुप्रेक्षाओं (भावनाओं) के सम्बन्ध में जान लेना चाहिये।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा के अन्दर इन बारह भावनाओं में अंतिम भावना धर्मानुप्रेक्षा है। उसके प्रारम्भ में गाथा ३०२ व ३०३ के द्वारा सर्वज्ञ का कथन किया गया है, क्योंकि सर्वज्ञ के द्वारा ही धर्मोपदेश दिया गया है। गाथा ३०४ में सागार और अनगार के भेद से दो प्रकार धर्म बतलाया गया, जिसमें सागार धर्म के बारह और अनगार के दस भेद कहे हैं। गाथा ३०५-३०६ में सागार के बारह भेदों का नाम उल्लेख किया गया है। इन बारह भेदों में प्रथम भेद शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। जिसका कथन गाथा ३०७-३२७ में किया गया है।

गाथा ३०७ में सम्यग्दर्शन के स्वामित्व का कथन है। गाथा ३०८ व ३०९ में बतलाया है कि कर्म के उपशम क्षय तथा क्षयोपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। गाथा ३१० में यह कथन है कि यह जीव असंख्य बार सम्यग्दर्शन, देशव्रत को ग्रहण करके छोड़ देता है।

गाथा ३११-३१२ जो पूर्व में उद्धृत की जा चुकी है, में यह स्पष्ट कहा गया है कि श्रुतज्ञान तथा नयों के द्वारा जो अनेकान्तमयी जीव-अजीव द्रव्य, आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-रूप पर्याय इन सात तत्त्वों का श्रद्धान करता है वह शुद्ध

सम्यग्दृष्टि है। इस की सामर्थ्य से यह भी विदित हो जाता है कि एकान्त नियतिवाद आदि की श्रद्धा करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

गाथा ३१३-३१६ इन ४ गाथाओं में सम्यग्दृष्टि के भावों का कथन है कि वह मद नहीं करता, मोक्षविलास को हेय मानता है, गुण ग्रहण करता है, विनय करता है, साधर्मि अनुराग होता है, देह से जीव को भिन्न जानता है।

गाथा ३१७ में कहा है कि जो दोष रहित देव को मानता है, सब जीवों की दया को उत्कृष्ट धर्म मानता है और निर्ग्रन्थ गुरु को मानता है वही निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। गाथा ३१८ में बतलाया है जो दोष सहित देव का, जीवहिंसा आदि को धर्म तथा वस्त्र सहित को गुरु मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। अथात् कुदेव, कुधर्म और कुगुरु का मानने वाला मिथ्यादृष्टि है।

यदि कोई यह मानकर कि कुदेव आदि लक्ष्मी, पुत्र आदि देकर जीव का उपकार करते हैं कुदेव आदि को मानने लगे तो महान मिथ्यात्व छुड़ाने के लिये श्री १०८ स्वामी कार्तिकेय कुदेवादि की पूजा के निषेध के लिये गाथा ३१९ के द्वारा निम्न प्रकार उपदेश देते हैं—

णय कावि देदि लच्छी, ण कोवि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मपि सुहासुहं कुणदि ॥३१९॥

अर्थ—न तो कोई जीव को लक्ष्मी देता है और न कोई उसका उपकार करता है, किन्तु शुभ अशुभ कर्म जीव का उपकार और अपकार करता है।

इस गाथा ३१९ में जो यह सिद्धांत बतलाया है कि एक जीव दूसरे जीव का उपकार या अपकार नहीं कर सकता है, यह मात्र

कुदेवादि की पूजा के निषेध के लिये है, किन्तु इस सिद्धान्त को सर्वथा नहीं मानना चाहिये। श्री स्वामी कार्तिकेय ने स्वयं यह कथन किया है कि एक जीव दूसरे जीव का अपकार या उपकार करता है।

तिरिएहिं खज्जमाणं, दुट्ठ-मणुस्सेहिं हम्ममाणो वि।
सव्वत्थवि संतट्ठो, भय-दुक्खं विसहदे भाम ॥४१॥
अण्णोण्णं खज्जंता तिरिया पावंति दारुण दुक्खं।
माया वि जत्थ भक्खदि, अण्णो को तत्थ रक्खेदि ॥४२॥

अर्थ—एक तिर्यंच को अन्य तिर्यंच खा लेते हैं, दुष्ट मनुष्य उसे मार डालते हैं, अतः सब जगह से भयभीत हुआ प्राणी भयानक दुःख को सहता है। तिर्यंच परस्पर में ही एक दूसरे को खा जाते हैं, अतः दारुण दुःख पाते हैं। जहाँ माता ही भक्षक हो वहाँ दूसरा कौन रक्षा कर सकता है?

गाथा ३१७ में 'जीवाणं रक्खणं धम्मो' तथा गाथा ४७८ में 'जीवाणं रक्खणं धम्मो।' इन शब्दों द्वारा यह बतलाया गया है कि जीवों की रक्षा अथवा रक्षा करना उत्कृष्ट धर्म है। जीवों की रक्षा करना ही तो अन्य जीवों का उपकार है।

श्री सर्वज्ञदेव ने भी उपदेश दिया है कि परस्पर में एक जीव दूसरे जीव का उपकार कर सकता है। उस सर्वज्ञ वाणी के अनुसार—'परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ (मो शा अध्याय ५) इस सूत्र की रचना हुई है। अर्थात् परस्पर सहायक होना यह जीवों का उपकार है। इस सूत्र की टीका में भी १०८ श्रुत सागर जी आचार्य ने निम्न प्रकार कहा है—

'यथा पिता पुत्रस्य पोषणादिकं करोति, पुत्रस्तु

कूलतया देवाचनादिक कारयन श्रीखण्डघर्षणादिक करोति । यद्दो चार्यं इहलोक-परलोकसौख्यजनकमुपदेशं दर्शयति तदुपदेशस्तत्क्रियानुष्ठानं कारयति, शिष्यस्तु गुरुमनुकूलवृत्या तत्पादमर्दनमस्कारविधानगुणस्तवनाभीष्टवस्तुसमर्पणादिकमुपकारं करोति। यदि राजा विड्वरेभ्यो धनादिकं रक्षति भृत्यास्तु स्वामिने हितं प्रतिपादयन्ति अहितप्रतिषेधं च कुर्वन्ति, स्वामिनं च पूजन कृत्वा स्वयमग्रे भूत्वा स्वामिशत्रुभञ्जनाय युद्ध्यन्ते । ,यो जीवो यस्य जीवस्य सुखं करोति स जीवस्तं जीवं बहुवारान जीवयति, यो मारयति स तं बहुवारान मारयति ।"

इस सूत्र की टीका का यह अभिप्राय है कि पिता पुत्र का और पुत्र पिता का, आचार्य शिष्य का और शिष्य आचार्य का, स्वामी सेवक का और सेवक स्वामी का उपकार करते हैं । जो जीव दूसरे को सुखी करता है, दुखी करता है, जिलाता है या मारता है, वह जीव भी उस जीव को बहुत बार सुखी करता है दुखी करता है, जिलाता है या मारता है ।

श्री पद्मपुराणादि प्रथमानुयोग में इसके अनेकों दृष्टान्त हैं । यदि उनका उल्लेख किया जाय तो बहुत विस्तार हो जायगा । अतः प्रथमानुयोग के ग्रन्थों से देखने की कृपा करें । श्री सर्वज्ञ देव ने जीवों के उपकार करने की प्रेरणा की है ।

रोगेण वा क्षुधाए, तण्हाए वा समेण वा रूढं ।
दिट्ठा समणं साहु, पडिवज्जदु आदसत्तीए ॥२५२॥

(प्रवचनसार)

अर्थ—रोग से, क्षुधा से, तृषा से अथवा श्रम से आक्रान्त (पीड़ित) श्रमण को देखकर साधु अपनी शक्ति के अनुसार वैयावृत्यादि करो ।

यद्यपि स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३१९ में यह कहा है-एक जीव दूसरे जीव का उपकार व अपकार नहीं कर सकता। और वहीं श्री कुन्दकुन्द भगवान ने प्रवचनसार में और श्री उमास्वामी आचार्य ने मोक्षशास्त्र में कहा है। इस प्रकार परस्पर विरोधी से दो उपदेश पाये जाते हैं। इन दोनों उपदेशों में से यदि कोई जीव किसी एक का सर्वथा पक्ष ग्रहण करके दूसरे को न माने तो वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है और जो नयविवक्षा से दोनों उपदेशों को यथार्थ मानता है वह स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि है।

यदि ऐसा एकान्त माना जावे कि एक जीव दूसरे जीव का उपकार या अपकार नहीं कर सकता तो जीवदया रूपी धर्म तथा द्रव्य-हिंसा के अभाव का प्रसंग आ जायेगा और इनके अभाव से बंध और मोक्ष का अभाव हो जायगा। द्रव्यहिंसा न होती हो ऐसा भी नहीं है, क्योंकि समयसार गाथा २८३-२८५ में अप्रत्याख्यान और अप्रतिक्रमण द्रव्य और भाव से (द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा) दो प्रकार का कहा गया है।

स्थितिकरण अंग का वर्णन करते हुए श्री स्वामी कार्तिकेय धर्म में स्थापना के द्वारा दूसरे के उपकार का उपदेश देते हैं।

धम्मादो चलमाणं जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि।
अप्पाणं पि सुदिढयदि, ठिदिकरणं होदि तस्सेव ॥४२०॥

अर्थ—धर्म से चलायमान अन्य जीव को जो धर्म में स्थिर करता है तथा अपने को भी धर्म में दृढ़ करता है उसके स्थिति करण गुण होता है।

यदि कोई जीव गाथा ३१९ के कथन के अनुसार यह विचार करे कि कोई जीव दूसरे का उपकार नहीं कर सकता, दूसरे जीव

का स्थितिकरण न करे तो क्या वह सम्यग्दृष्टि हो सकता है ? इस प्रकार सम्यग्दृष्टि की अनेकान्त दृष्टि होती है। वह किसी अपेक्षा से गाथा ३१०–३१२ के कथन को भी सत्य मानता है और किसी अपेक्षा से इनके प्रतिपक्षी कथन को भी सत्य मानता है।

व्यन्तर देवी देवता को वीतराग सर्वज्ञ देव मानकर नहीं पूजना चाहिये, अथवा वीतराग सर्वज्ञ देव की पूजा के समान व्यन्तर देवी देवता की पूजा नहीं करनी चाहिये। इस भाव को दृढ़ करने के लिये सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि मेरी भवितव्यता को व्यन्तरदेव तो टाल ही नहीं सकते, किन्तु इन्द्र और जिनेन्द्र भी टालने में असमर्थ हैं। जिस लक्ष्मी आदि को व्यन्तर देवादिक नहीं दे सकते उस लक्ष्मी को मैं अपने धर्म-पुरुषार्थ द्वारा अवश्य प्राप्त कर सकता हूँ। सम्यग्दृष्टि के इन विचारों का विवेचन स्वामी कार्तिकेय की गाथा ३२०–३२१–३२२ में है —

भत्ताए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मे कीरदि, एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥३२०॥
जं जस्स जम्मि देसे, जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे, तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कइ वारेदुं, इंदो वा तह जिणिंदो वा ॥३२२॥

व्यन्तर आदि की पूजा के निषेध को दृढ़ करने के लिये सम्यग्दृष्टि जो विचार करता है उन विचारों का कथन इन उपर्युक्त तीन गाथाओं में है, जैसा कि 'एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी'-गाथा ३२० के इन शब्दों से स्पष्ट होता है।

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि व्यन्तर आदि की पूजा या भक्ति करने से क्या लाभ, क्योंकि वे प्रसन्न होकर मुझको लक्ष्मी आदि इष्ट पदार्थ नहीं दे सकते। यदि व्यन्तर आदि इष्ट या अनिष्ट कर सकते होते तो धर्म करने का क्या आवश्यकता थी। व्यन्तर आदि न मुझको मार सकते हैं और न जीवित कर सकते हैं। जिस समय मेरा जन्म या मरण, सुख दुख होना होगा उसी समय होगा उसको टालने में व्यन्तरदेव तो क्या, इन्द्र या जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। वह सम्यग्दृष्टि अपने विचारों को दृढ़तम बनाने के लिये यह युक्ति भी देता है कि जैसा सर्वज्ञ ने जाना है वैसा ही होगा। सर्वज्ञज्ञान के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

विचारणीय बात यह है कि क्या इन गाथाओं द्वारा व्यन्तर देव की पूजा के निषेध को दृढ़ करने के लिये है या एकान्त नियतिवाद सिद्धान्त का उपदेश देने के लिए है ?

यदि प्रकरण के अनुसार विचार किया जायगा तो यह ही कहना होगा कि इन गाथाओं का अभिप्राय मात्र व्यन्तरदेव आदि की पूजा का निषेध करना है, क्योंकि ३१८ में दोष सहित देव के मानने वाले को मिथ्यादृष्टि कहा है और गाथा ३१९ में कहा है कि व्यन्तर इत्यादि किसी जीव का उपकार या अपकार नहीं कर सकते और गाथा ३२० में भी व्यन्तरादि देवों की पूजा का निषेध है।

यदि यह कहा जाय कि गाथा ३२१ व ३२२ में एकान्त नियति का उपदेश है तो उसमें अनेक दूषण आते हैं। जैसे—

१—गाथा ३११-३१२ में तत्त्वों (द्रव्य, पर्यायों) का जो अनेकान्तरूप से श्रद्धान है उसको सम्यग्दर्शन कहा है। इन गाथाओं

के विपरीत गाथा ३२१ व ३२३ में एकान्त नियति की श्रद्धा को यदि सम्यग्दर्शन कहा जायगा तो पूर्वापर विरोध का दोष आ जायगा।

२—द्वादशांग के दृष्टिवाद बारहवें अङ्ग में श्री गौतमगणधर ने कहा कि जो यह मानता है 'जब, जैसे, जहां, जिस हेतु से, जिसके द्वारा जो होना है, तभी वैसे ही, वहां ही, उसी हेतु से, उसी के द्वारा, वह होता है, यह सब नियत है, दूसरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता' वह नियतिवाद परमत अर्थात् गृहीतमिथ्या दृष्टि है। अतः द्वादशांग रूप सर्वज्ञवाणी से विरोध का दूषण आ जायगा।

३—सर्वज्ञ देव ने 'अकाल' मरण का कथन करते हुये यह कहा है कि अपमृत्यु का समय नियत नहीं है जैसा कि पहले आप ग्रन्थों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है। यदि सब जीवों के मरण का काल नियत माना जायगा तो सर्वज्ञदेव के अकाल मरण के कथन से विरोध का दूषण आ जायेगा।

४—सर्वथा नियति मानने से, लक्ष्मी तो अपने नियत काल और नियत कारणों से मिलेगी, किन्तु गाथा ३२० में धर्मपुरुषार्थ से लक्ष्मी मिलती है ऐसा कहा गया है। इन दोनों उपदेशों में परस्पर विरोध का दूषण आ जायगा।

५—सर्वज्ञ देव ने नियतिनय-अनियतिनय, कालनय-अकालनय इस प्रकार परस्पर विरोधी नयों का उपदेश दिया है। सर्वथा नियति मानने से सर्वज्ञ देव के इस उपदेश से विरोध का दूषण आ जायगा।

६—सर्वज्ञदेव ने क्रम और अक्रम (नियति और अनियति) पर्यायों का कथन किया है और पर्यायों को इसी रूप से देखा

है। क्योंकि जिनेन्द्र अयथावादी नहीं होते। यदि पर्यायों को सर्वथा नियमित (क्रमबद्ध) माना जाय तो सर्वज्ञ ज्ञान और सर्वज्ञ वाणी दोनों से विरोध का प्रसंग आ जायगा।

७—श्री सर्वज्ञ देव ने अनेकान्त रूपी मूल सिद्धान्त का उपदेश अपनी दिव्यध्वनि द्वारा दिया है। यदि सर्वथा नियति को माना जावे तो सर्वज्ञ कथित अनेकान्त से विरोध आता है।

८—श्री सर्वज्ञ देव ने 'सर्व प्रतिपक्ष सहित हैं' ऐसा उपदेश दिया है जिसको श्री वीरसेन स्वामी ने धवल ग्रन्थ में तथा श्री कुन्दकुन्द भगवान ने पंचास्तिकाय में गुम्फित किया है। जैसे भव्य है तो उसका प्रतिपक्षी अभव्य अवश्य है। यदि मुक्त पर्याय है तो उसका प्रतिपक्षी बंध पर्याय (संसार पर्याय) अवश्य है, यदि शुद्ध पर्याय है तो उसका प्रतिपक्षी अशुद्ध पर्याय है। यदि नियत पर्याय है तो उसका प्रतिपक्षी अनियत पर्याय अवश्य है। यदि प्रतिपक्षी का सद्भाव नहीं तो उसका भी सद्भाव नहीं है। सर्वथा नियति के मानने पर अनियति का अभाव हो जायगा और अनियति के अभाव से नियति का सद्भाव भी सिद्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार सर्वथा नियति मानने पर भी सर्वज्ञदेव कथित 'सर्व सप्रतिपक्ष' सिद्धान्त से विरोध आता है।

९—स्वामी कार्तिकेय की गाथा ३२३ में यह नहीं कहा गया कि सर्वज्ञदेव ने जब देखा है तब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी, किन्तु जब तत्व, पदार्थ, छह द्रव्य आदि का श्रद्धान करे उस समय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के लिये कोई काल नियत है, ऐसा नहीं कहा।

राजवार्तिक में यदि उपदेश द्वारा नियत काल से पूर्व मोक्ष हो जाय तो अधिगमज सम्यक्त्व हो सकता है। किन्तु ऐसा

सम्भव नहीं । अतः आपगमज सम्यक्त्व का अभाव है ।' इस शंका के उत्तर में श्री सर्वज्ञ उपदेश अनुसार इस प्रकार कहा गया है—

"यतो न भव्यानां कृत्स्नकर्मनिर्जरापूर्वकमोक्षकालस्य नियमोऽस्ति । यदि हि सर्वस्य कालो हेतुरिष्टः स्यात्, बाह्याभ्यन्तर-कारणनियमस्य दृष्टस्येष्टस्य वा विरोधः स्यात् ।"

अर्थात भव्यों के मोक्ष के काल का नियम नहीं है । यदि सब कार्यों के लिये काल को हेतु मान लिया जावे (जब जिस कार्य का काल आवेगा तब ही वह कार्य होगा) तो प्रत्यक्ष और परोक्ष के विषयभूत कारणों से विरोध हो जायगा ।

श्री स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा २१९ में भी कहा है कि पदार्थ में नाना प्रकार के परिणमन करने की शक्ति है । जिस शक्ति के अनुकूल बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल आदि मिलेंगे वैसा परिणमन हो जायगा, उसको रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है । जैसे चावल में भात रूप परिणमन शक्ति है किन्तु इन्धन अग्नि पतीली जल आदि प्राप्त करके ही वह चावल भात रूप पर्याय को प्राप्त होता है ।

१०—ज्ञेयों के परिणमन में केवलज्ञान कारण नहीं है क्योंकि केवलज्ञान का ज्ञेयों के परिणमन के साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध नहीं है। सर्वज्ञ देव ने कहा है कि जो जिसका कारण होता है उसका उसके साथ अन्वय व्यतिरेक अवश्य पाया जाता है ।

क्योंकि अन्वय व्यतिरेक के द्वारा ही कार्य कारण भाव सुप्रतीत होता है, अतः केवलज्ञान को ज्ञेयों के परिणमन के प्रति कारण मानना सर्वज्ञवाणी के विरुद्ध है। अतरंग और बहिरंग निमित्तों के अनुसार ज्ञेया अर्थात् पदार्थों का परिणमन हो रहा है।

ज्ञेयों (पदार्थो) के परिणमन अनुसार केवलज्ञान में परिणमन होता है, ऐसा उपदेश सर्वज्ञदेव ने दिया है जिसको आचार्यों ने आगम में गुम्फित किया है, जो इस प्रकार है—

"ज्ञेयपदार्थाः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छित्त्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति।"

(प्रवचनसार पृ २५)

अर्थ—ज्ञेय पदार्थ प्रतिक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीन रूप से परिणमन करते हैं। उसी के अनुसार अर्थात् ज्ञेयों के परिणमन अनुसार ज्ञान भी जानने की अपेक्षा से उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनरूप परिणमन करता है।

येन येनोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण प्रतिक्षणं ज्ञेयपदार्थाः परिणमन्ति तत्परिच्छित्त्याकारेणानीहितवृत्त्या सिद्धज्ञानमपि परिणमति।

(बृहद् द्रव्य संग्रह गाथा १४ टीका)

अर्थ—ज्ञेय पदार्थ अपने जिस जिस उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप से प्रति समय परिणमते हैं उन उनके जानन रूप आकार से निरिच्छुक वृत्ति से (बिना इच्छा के) सिद्धों का ज्ञान भी परिणमता है।

'ण च णाणविसेसदुवारेण उप्पज्जमाणस्स केवलणाणंसस्स केवलणाणत्त फिट्टदि, पमेयवसेण परियत्तमाणसिद्धजीवणाणाणं पि केवलणाणत्ताभावप्पसंगादो।

(ज ध प १ पृ ५१)

अथात्—यदि केवलज्ञान के अंश मतिज्ञानादि ज्ञान विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमें केवलज्ञानत्व नहीं माना जा

सकता है तो प्रमेय के वश से सिद्ध जीवों के भी ज्ञानांशों में परिवर्तन देखा जाता है। अत उन अशों में केवलज्ञान नहीं बनेगा।

पदार्थों के परिणमन के आधार से केवलज्ञान का परिणमन होता है इसीलिये केवलज्ञान को पदार्थों की सहायता की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रियादि की सहायता की आवश्यकता नहीं है। इसी बात को श्री १०८ वीरसेन स्वामी ने कहा है—

"आत्मार्थव्यतिरिक्तसहायनिरपेक्षत्वाद्वा केवलमसहायम्।"

(ज ध पु पृ २१)

उपर्युक्त सर्वज्ञताणा के विरुद्ध जो अन्यमतों की तरह केवलज्ञान के आधीन पदार्थों का परिणमन मानता है वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वज्ञताणी पर उसकी श्रद्धा नहीं है।



(गैस का, अणुवम आदि का) हवाई दुर्घटना, रेल मोटर साईकिल की दुघटना, विष भक्षण आदि कारणों से हजारों स्वस्थ तरुण पुरुष स्त्री मर जाते हैं।

ऐसी मृत्यु को सर्वज्ञ वाणी-अनुसार आर्षग्रन्थों में अकालमरण कहा गया है। जबकि आयु के पूर्ण क्षण भोग लेने पर होने वाले मरण को काल मरण कहा है। सोपक्रम आयु-निरुपक्रम आयु, अपवर्त्य आयु-अनपवर्त्य आदि इसी अकाल मरण-काल मरण के नामान्तर हैं।

नयों के विभाग में कालनय तथा अकालनय भी इसी द्विविध मरण के समर्थक हैं।

जो व्यक्ति अकालमरण को स्वीकार नहीं करते, भ्रमवश 'कालमरण' का ही एकान्त हठ करते हैं, उनको प्रबुद्ध करने के लिये माननीय सिद्धान्तभूषण श्री बा० रतनचन्द्र जी मुख्तार सहारनपुर ने प्रश्न-उत्तर रूपमें यह ट्रेक्ट लिखा है, जो कि उनके प्रकाशित लेखों का संग्रह है। इसमें आपने श्री कुन्दकुन्द, उमास्वाति, समन्तभद्र, विद्यानन्द, अमृतचन्द्र सूरि आदि अनेक प्रामाणिक प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों के प्रमाण दिये हैं।

वे प्रमाण सर्वज्ञ वाणी के अनुसार ही हैं, अतः सर्वज्ञ की दुहाई देने वाले भ्रान्त बन्धुओं के इस सर्वज्ञ-वाणी में अपनी श्रद्धा व्यक्त करके अनेकान्तात्मक 'काल मरण और अकाल मरण' को स्वीकार करना चाहिये।

—अजितकुमार शास्त्री
सम्पादक—जैन गजट
...ी-भा॰ दि० जैन शास्त्रिपरिषद्